IJARSCT

ISSN (Online) 2581-9429

International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)

International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal

Impact Factor: 4.819

Volume 7, Issue 1, July 2020

Hkkjr foHkktu dh =klnh

M,- mn;Hkku ;kno

vflLVsV izksQslj] fgUnh

राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़

सन् 1947 ई0 में भारत को स्वतंत्रता के आहलाद के साथ–साथ विभाजन का द"ा भी मिला। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज्य करो'; की नीति की चरम परिणति साम्प्रदायिक हिंसा में परिलक्षित हो रही थी। अंग्रेजों ने अपनी अलगाववादी राजनीति की सहायता से धर्म के आधार पर संस्कृति के बँटवारे को मंजूरी दी थी। मुस्लिम लीग की हठवादी प्रवृत्ति, हिन्दू महासभा का प्रतिक्रियात्मक रूप और कांग्रेस की मौन सहमति ने भारत–विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। ''यह एक अजीब स्थिति थी कि हमारे राष्ट्रीय संगठन ने विभाजन के पक्ष में निर्णय लिया लेकिन लोगों ने विभाजन पर शोक प्रकट किया।''[1]

मुस्लिम लीग जो लम्बे समय से मुसलमानों का प्रतिनिधि होने का दावा करती आ रही थी और विभाजन की जिद पर अड़ी हुई थी वे कार्यकर्ता विभाजन के बाद मुसलमानों का हश्र देखकर हतप्रथ थे। ''देश के विभाजन की जो तस्वीरे उन्होंने बनाई थी। उसका वास्तविक स्थिति से कोई मेल नहीं था। मुस्लिम लीग के कार्यकर्ता ये सोचते थे, कि मुसलमान चाहे अल्पसंख्यक प्रान्तों के हो या बहुसंख्यक प्रान्तों के रहने वाले हों, उनका एक अलग राष्ट्र बनाया जाएगा और उन्हें अपने भविष्य को स्वयं निर्धारित करने का अधिकार प्राप्त होगा। अब जब कि मुस्लिम बहुत प्रान्त भारत से बाहर चले गये, पंजाब और बंगाल भी बँट गये और जिन्ना कराची के लिए रवाना हो गये, तो इन मूर्खों की समझ में आया कि उन्होंने हिन्दुस्तान के विभाजन से कुछ भी हासिल नहीं किया बल्कि वास्तव में सब कुछ खो दिया।''[2]

विभाजन से पूर्व ही हिन्दू– मुसलमान आपस में लड़ रहे थे। विभाजन के दौरान हिन्दू एवं मुसलमान दोनों के लिए भारत या पाकिस्तान चुनने की स्वतंत्रता दी गयी थी। पाकिस्तान निर्माण का तर्क चूँकि धार्मिक था अतः बड़ी संख्या में वहाँ से हिन्दू एवं भारत से मुसलमान विस्थापित हो रहे थे। इस विस्थापन के दौरान हिंसा एवं अमानवीयता की सभी सीमाएं तोड़ दी गयी थी। स्थिति यह थी कि विभाजन के आरम्भिक कुछ सप्ताहों तक हत्या लूट और बलात्कार का नंगा नाच चलता रहा था। ''इस विध्वंस में लगभग 5,00,000 लोग मारे गये और 33,00,000 लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ा। सम्प्रदायीकृत माहौल में मुसलमान, और हिन्दू–मुसलमान जनसंख्या जो कि सद्भाव के साथ रह रही थी, की सहन शक्ति खतम हो गयी। ''शवों को लेकर जब रेलगाड़ी दिल्ली पहुँची तो स्थानीय लोगों को सीमा के उस पार बर्बर हत्याकांड की दास्तानें सुनने को मिली जिससे स्थिति और भी खराब हो गई। जिन लोगों के परिवार खत्म हो गए और सम्पत्ति लुट गई। वे अपने साथ गुस्सा और कड़वाहट लेकर आए। यहाँ उन्होंने अपने इलाकों में दूसरे समुदाय की मौजूदगी पर सवाल खड़े किये।''[3] जो मुसलमान भारत में रह गये उन्होनें विभाजन के दंगे झेले। जिन हिन्दुओं के रिश्तेदार सम्बन्धी सीमा पर मारे गये वो गुस्से में भारत आए। इन निराश्रित हिन्दुओं ने भारत में रहने वाले मुसलमानों को मारकर अपने रिश्तेदारों का बदला लिया। विभाजन एवं दंगों के दूरगामी प्रभाव हुए। विभाजन से भारतीय मुसलमानों को धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक सभी दृष्टियों से भारी नुकसान हुआ। विभाजन एवं दंगों

---

1. मौलाना अबुल कलाम आजाद–इण्डिया विंग्स फ्रीडम उद्धृत–भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, पृ0 103
2. असगर अली इंजीनियर– भारत में साम्प्रदायिक इतिहास और अनुभव, पृ0 104.
3. भारत में साम्प्रदायिक इतिहास और अनुभव, पृ0 104असगर अल इंजीनियर

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 7, Issue 1, July 2020

का स्वरूप इतना भयावह था कि इसके बाद मुसलमानों की हैसियत कमजोर पड़ी और अविभाजित भारत में जिस राजनीतिक भूमिका का वे निर्वहन कर रहे थे उससे वंचित हो गए। लगभग एक दशक तक वे निष्क्रिय पड़े रहे। अपनी सुरक्षा एवं कल्याण के लिए उन्हें सरकार का मुखापेक्षी होना पड़ रहा था। विभाजन की त्रासदी से जो साम्प्रदायिक वातावरण निर्मित हुआ, उससे हिन्दू–मुसलमान सम्बन्धों में वृहत्तर स्तर पर बदलाव देखे गये। जो मुसलमान पहले विधर्मी और विदेशी कहे जाते थे अब वे पाकिस्तान के हिमायती माने गए। ऐसा पहली बार हो रहा था कि उनकी राष्ट्रभक्ति संदेहास्पद हो रही थी और उनकी भारतीयता पर प्रश्न उठाया जाने लगा था। उनकी मातृभूमि के प्रति निष्ठा को पाकिस्तानी पृष्ठभूमि में देखा जाने लगा था। यह एक त्रासद स्थिति थी जिसमें अल्पसंख्यक होने के दर्द के साथ–साथ मुसलमानों को गद्दार एवं राष्ट्रद्रोही की पीड़ा से दो–चार होना पड़ रहा था। ''भारत विभाजन एवं उसके साथ ही उत्पन्न बर्बर एवं भयावह दंगों के बावजूद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की एक बहुत बड़ी जीत यह थी कि भारतीय जनता ने धर्म निरपेक्षता को एक बुनियादी मूल्य के रूप में स्वीकार किया और एक सेक्यूलर राज्य एवं समाज के निर्माण की ओर प्रस्थान किया। यह धर्म निरपेक्षता हमारे संविधान में भी निहित है।''[4]

भारतीय प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने साम्प्रदायिकता की वृत्ति पर निर्मम प्रहार करते हुए धर्मनिरपेक्षता की छवि निर्मित की और मुसलमानों में यह विश्वास दिलाया कि वे भारतीय नागरिकता के उतने ही अधिकारी है जितने कि किसी अन्य समु दाय के व्यक्ति। जवाहर लाल नेहरू साम्प्रदायिकता की जड़ों को गहरे स्तर तक पहचान सकने में सक्षम थे। वे सिर्फ अंग्रेजों को ही साम्प्रदायिकता के लिए उत्तरदायी नहीं मानते, अपितु वे स्वीकार करते थे कि भारतीय सामाजिक संरचना में विविधता का तत्व उसके लिए उत्तरदायी था। इसलिए वे सामाजिक–आर्थिक विकास पर जोर देते थे। उन्होंने विकास के लिए पूँजीवादी–समाजवादी ढाँचे का मिला जुला रूप अपनाया था। वे महत्वाकांक्षी योजनाओं को आधुनिक भारत के मंदिर, मस्जिद एवं गुरूद्वारे की संज्ञा से विभूषित करते थे लेकिन ''सन् 50 के बाद जब सामाजिक–राजनीतिक, आर्थिक जटिलताओं में वृद्धि हुई तो क्षेत्रीयता की संरचना संश्लिष्ट रूप में सामने आई और उनमें एक साथ भाषाई, धार्मिक व जातीय रंग घुले–मिले नजर आने लगे।''[5] स्वतंत्र भारत के केन्द्रीयकृत ढाँचे में क्षेत्रीयता के उभार ने अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक के बोध को बहुत गहरा किया। इस बोध से हिन्दू–मुसलमान सम्बन्धों में तीखे उभार आए। जवाहर लाल नेहरू के धर्मनिरपेक्षता का आश्वासन बहुत प्रभावी नहीं रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देशी राज्यों हैदराबाद, जूनागढ़, एवं कश्मीर के भारतीय संघ में शामिल होने पर भी हिन्दू –मुसलमान सवाल उभरा। वर्ष के अन्त में कश्मीर को अधिग्रहीत कर लेने के प्रयास ने भारतीय हिन्दुओं के मन में पाकिस्तान के लिए घृणा पैदा की और इस घृणा का रूप मुसलमानों के लिए भी समान रूप से बना रहा। भारत का विभाजन 1947 ई0 में धार्मिक आधार पर हुआ था। धर्म के आधार पर संस्कृति को बाँटने का तर्क इतना बेमानी था कि इस्लामिक राष्ट्र के रूप में अलग हुआ पाकिस्तान भाषाई एवं सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण 1971 में दो भागों में विभाजित हो गया। अलगाववादी आन्दोलन चला रहे पूर्वी पाकिस्तान के जन नेता मुजीबउर्रहमान का भारत ने पक्ष लिया और एक भीषण संग्राम के बाद पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सेना के समक्ष आत्म समर्पण कर दिया।

वस्तुतः साम्प्रदायिकता के प्रति सत्तासीन सरकारों का ढुलमुल रवैया एवं अस्पष्ट नीति इन सम्प्रदायों की राजनीति करने वाले समूहों के लिए पोषण का काम करती रही हैं। विकास के पूँजीवादी तरीके ने आर्थिक असमानता का जो कुचक्र तैयार किया उससे मध्यवर्ग में अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा शुरू हुई। विकास की गति जनसंख्या वृद्धि के अनुपात में धीमी ही रही। कहना न होगा, कि मुसलमान समाज में जनसंख्या वृद्धि दर आज भी सर्वाधिक है।

---

4. असगर अली इंजीनियर – भारत में साम्प्रदायिकता इतिहास और अनुभव, पृ0 105
5. अभय कुमार दूबे, क्षेत्रीय समर्थन की तलाश में हिन्दुत्व, साम्प्रदायिकता के श्रोत। पृ0 119

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 7, Issue 1, July 2020

सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में जो अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा आई उससे स्वतंत्रता नौकरियों के अवसरों के अचानक बढ़ जाने के बाद भी 1960 के दशक के मध्य तक निम्न मध्यवर्ग में बेरोजगारी बहुत बढ़ गई थी। दिशाहीन शिक्षित युवाओं के लिए अवसरों की कमी ने समाज में अराजकता के लिए जमीन पैदा की। कृषि एवं उद्योग के क्षेत्र में भी असमानता ने असंतोष का वातावरण बनाया। वास्तव में भारतीय समाज की बुनावट ही कुछ ऐसी है। कि छोटे एवं सामान्य कारक भी सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न करने में सफल हो जाते हैं।

कुल मिलाकर यह कहना ज्यादा प्रासंगिक होगा कि सदियों से साथ– रहते रहते हिन्दू एवं मुसलमानों ने तमाम विभिन्नताओं के रहते हुए भी सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे को आत्मसात किया। यही कारण है कि उ0प्र0, बिहार का मुसलमान उ0प्र0, बिहार के हिन्दू से कहीं ज्यादा साम्य संस्कृति का साक्षीदार है। न कि बंगाल या पंजाब का मुसलमान संस्कृति का साझीदार है। संस्कृति की अभिन्नता का ही प्रभाव था कि विभाजन के बाद अधिकांश मुसलमानों ने अपनी जड़ों से कटना पसन्द नहीं किया। यह लक्षित किया गया कि पाकिस्तान का चुनाव अभिजात वर्ग के मुसलमानों ने ही अधिकतर किया।

सांस्कृतिक अभिन्नता के इस समय में ढेर सारे रीति रिवाज, परम्पराएं, रूढ़ियाँ एवं रहन–सहन के तरीके दोनों समुदायों ने एक दूसरे से लिए और सुख–दुख में साझीदार बने।

भारत एक बहुसांस्कृतिक देश है इसलिए जब 1947 में भारत का विभाजन हुआ तो जैसे उसने जन भावनाओं को हिलाकर रख दिया। तत्कालीन विभाजन केवल सत्तात्मक प्रवृत्ति का परिणाम था। वह जनता की भावनाओं के अनुरूप नहीं था। 15 अगस्त 1947 के अन्तर्विरोध आज तक इतिहासकारो को हैरान कर रहे हैं। सीमा के दोनों ओर के लोगों को भी उनके नतीजों से मुक्ति नहीं मिल पाई है। आजादी एक लम्बे, गौरवपूर्ण संघर्ष के बाद हासिल की गई थी और उससे करोड़ों लोगों का सपना पूरा हुआ था। लेकिन इसके साथ ही एक खूनी त्रासदी विभाजन ने हमारे उदीयमान स्वतंत्र राष्ट्र के ताने–बाने को छिन्न–भिन्न कर दिया। इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण सवाल उठते हैं। अंगेजों ने अन्ततः भारत क्यों छोड़ा? विभाजन की योजना कांग्रेस ने क्यों स्वीकार की? इन सवालों का साम्राज्यवादी जवाब बहुत सीधा– सादा है। ब्रिटेन चाहता था कि भारतीय अपना शासन खुद चलाएँ और आजादी उसकी इसी इच्छा का नतीजा थी। विभाजन सदियों पुराने हिन्दू –मुस्लिम वैमनस्य का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम था, इस बात का सबूत यह है कि ये दोनों समुदाय आपस में तय नहीं कर पाए कि सत्ता किसे सौंपी जाए और कैसे? साम्यवादी मानते हैं कि आजादी 1946–47 के उन जन –संघर्षों द्वारा हासिल की गई, जिनमें बहुत से कम्युनिस्टों ने योगदान किया और अनेक मौके पर जिनका नेतृत्व भी किया। लेकिन कांग्रेस के बुर्जुआ नेता इस क्रांन्तिकारी उभार से डर गए और उन्होंने साम्राज्यवादियों से समझौता कर सत्ता अपने हाथ में ले ली। राष्ट्र को इसकी कीमत विभाजन के रूप में चुकानी पड़ी। यह विभाजन एक मानवता का विभाजन था जिसे बाद में चलकर अन्य राजनेताओं ने भी स्वीकारा।

जिस समय भारत में ब्रिटिश शासन चला रहा था, तो उसका आंशिक कारण भारतीय जनता के बहुत से हिस्सों की सहमति या मूक स्वीकृति भी थी। औपनिवेशिक शासन का सामाजिक आधार जमींदारों उच्च वर्गों, सरकार परस्तों आदि के बीच सीमित था, जो विदेशी सरकार के विशेष रूप से कृपा भाजन थे। ये वे लोग थे, जो प्रशासन चलाते थे, सरकारी नीतियों का समर्थन करते थे। और उन सुधार–कायक्रमों पर अमल करते थे, जिन्हें सरकार बड़ी हिचक के साथ और देर से लागू करती थी।

सरकार परस्तों का संकट आस्था का था, तो नौकरशाही का संकट कर्म का था। नौकरशाही तभी निर्णायक ढंग से अपना काम कर सकती थी, जब नीति स्पष्ट हो यानी समझौतावादी या दमन, दोनों में से करना क्या है? यह साफ हो। दोनों को मिलाकर चलने की नीति से तो समस्याएँ ही पैदा हो सकती थी, क्योंकि एक ही अधिकारी वर्ग को दोनों काम करने थे। यह संकट पहली बार 1930 के दशक के मध्य में पैदा हुआ। जब कांग्रेस की सरकारें बनने वाली थी। अधिकारी इस सम्भावना से

IJARSCT
ISSN (Online) 2581-9429
International Journal of Advanced Research in Science, Communication and Technology (IJARSCT)
International Open-Access, Double-Blind, Peer-Reviewed, Refereed, Multidisciplinary Online Journal
Impact Factor: 4.819
Volume 7, Issue 1, July 2020

चिन्तित थे कि जिन नेताओं का उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान दमन किया था। अब उन्हीं का हुक्म मानकर चलना पड़ेगा।

वस्तुतः युद्ध के अंत तक उन अधिकारियों और नीति निर्माताओं के समक्ष भविष्य की दिशा स्पष्ट हो चुकी थी, जो सत्ता के गत्यात्मक चरित्र को समझते थे। सेना के लोगों द्वारा ही आजाद हिन्द फौज सैनिको के प्रति नरमी की मांग और नौसेना के एक वर्ग में विद्रोह की घटनाओं से ही दूरदृष्टि वाले अधिकारियों ने समझ लिया था कि इस बार जो तूफान उठा है, वह किसी बड़े उथल पुथल से थमने वाला नहीं है। समझौते के लिए समय उपयुक्त था क्योंकि एक ओर साम्राज्यवादी शासकों को इसकी आवश्यकता की समझ थी और दूसरी ओर राष्ट्रवादी नेता भी बातचीत करने को तैयार थे। अर्थात उस समय अब विभाजन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। लेकिन खून की नदियाँ बहने के पश्चात ही अगस्त 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त हुई जबकि 1946 के शुरू में इसे मौन स्वीकृत मिल गयी थी। ''साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद का संघर्ष, जिसका सैद्धांतिक तौर पर समाधान हो चुका था, 1946 के आरम्भ में ही पर्दे से पीछे हट गया। अब एक नए संघर्ष ने उसका स्थान लिया जो ब्रिटिश सरकार, कांग्रेस और मुस्लिम लीग की भविष्य की तरह–तरह की कल्पनाओं के बीच था।''[6]

साम्राज्यवाद के पीछे हटने के बाद नए भारत की क्या दिशा होगी? कांग्रेस की मांग थी कि सर्वप्रथम एक केन्द्रीय इकाई को सत्ता सौंप दी जाए। उसके बाद अल्पसंख्यकों की समस्याओं का समाधान निकाला जाएगा। मुसलिम बहुल प्रान्तों को स्वायत्तता देकर या फिर आत्म निर्णय द्वारा भारतीय संघ से सम्बन्ध विच्छेद करके, लेकिन यह सब तभी होगा जब अंग्रेज सरकार सत्ता हस्तांतरण कर देगी। ब्रिटिश सरकार अखण्ड भारत चाहती थी जो ब्रिटेन से भिन्नता के साथ–साथ राष्ट्रमण्डल की सुरक्षा योजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाए। विभाजित भारत की आत्मरक्षा की क्षमता सीमित थी और संभव था कि वह संयुक्त सुरक्षा योजनाओं को निरर्थक बनाए और ब्रिटिश कूटनीति पर धब्बा बनकर रह जाए। आजादी से पहले मुस्लिम लीग के प्रति प्रोत्साहन की ब्रिटिश नीति और वर्तमान विश्व राजनीति में पाकिस्तान का पाश्चात्य साम्राज्यवादी ताकतों के साथ गठबंधन को उठाते हुए यह स्वाभाविक सा लगता है। कि आजाद होने पर भविष्य में पाकिस्तान ही ब्रिटेन का मित्र देश बनेगा।

भारत विभाजन की इन सारी पारिस्थितियों का भारतीय जनता पर बड़ा तनावग्रस्त प्रभाव पड़ रहा था। वह विभाजन को स्वाभाविक तौर पर स्वीकार नहीं कर पा रही थी। लोग जब एक दूसरे सम्प्रदायों के खून के प्यासे हो रहे थे तो वह भी सत्तात्मक प्रवृत्ति का एक घिनौना रूप था, जिसे जनता झेल रही थी।

भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या को केवल हिन्दू मुस्लिम प्रश्न अथवा इसको हिन्दू–मुस्लिम धर्मो का विरोध मानना ठीक नहीं। साम्प्रदायिक प्रश्न का आधार राजनैतिक अधिक और धार्मिक कम है। इन दो धर्मो के अतिरिक्त इस त्रिभुज में तीसरा पक्ष थी था। अंग्रेजों ने हिन्दू और मुस्लिम सम्पदायों के बीच अपने आपको स्थापित कर एक साम्प्रदायिक त्रिभुज खड़ा कर दिया। ''एक साम्प्रदायिकता से दूसरी साम्प्रदायिकता समाप्त नहीं होती। प्रत्येक एक दूसरे को बढ़ावा देती है और दोनों ही पनपती है।''[7]

[6]. विपिन चन्द्र –भारत का स्वतंत्रता संघर्ष – पृ0 392
[7]. पं0 जवाहर लाल नेहरू–उद्धत बी0एल0 गोवर – आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन, पृ0 418